



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मि समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-4.0

Vol.-3; issue-2 (April-June) 2026

Page No- 211-227

©2026 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author's :

1. Javed Akhtar

UGC NET Qualified, Research Scholar, Department of Political Science, Jai Prakash University Chapra (Bihar).

2. Dr. Md. Asadullah

Assistant Professor, Hotilal Ramlal College Amnour, Saran, Jai Prakash University Chapra (Bihar).

Corresponding Author :

Javed Akhtar

UGC NET Qualified, Research Scholar, Department of Political Science, Jai Prakash University Chapra (Bihar).

अल्पसंख्यक राजनीति का लोकतंत्रीकरण : समकालीन भारतीय राजनीति में 'अशरफ बनाम पसमंदा' विमर्श और चुनावी प्रतिनिधित्व

सारांश : यह शोध पत्र समकालीन भारतीय राजनीति के संदर्भ में मुस्लिम अल्पसंख्यक राजनीति के भीतर चल रहे आंतरिक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है। पारंपरिक रूप से, भारत में अल्पसंख्यक विमर्श को एक समरूप (Monolithic) पहचान के रूप में देखा जाता रहा है, जिसका नेतृत्व मुख्य रूप से उच्च-जाति और उच्च-वर्गीय 'अशरफ' अभिजात वर्ग के हाथों में रहा है। प्रस्तुत शोध इस पारंपरिक धारणा को चुनौती देने वाले 'अशरफ बनाम पसमंदा' (पिछड़े, दलित और आदिवासी मुस्लिम) विमर्श का समालोचनात्मक मूल्यांकन करता है। मंडल आंदोलन के उत्तर-काल और विशेषकर समकालीन चुनावी राजनीति (2014 के बाद) में, पसमंदा आंदोलन ने अल्पसंख्यक राजनीति के एजेंडे को 'भावनात्मक और धार्मिक पहचान' के मुद्दों से हटाकर 'सामाजिक न्याय, आरक्षण और आनुपातिक चुनावी प्रतिनिधित्व' की ओर मोड़ने का काम किया है।

गुणात्मक और मात्रात्मक (Qualitative and Quantitative) शोध पद्धति का उपयोग करते हुए, यह शोध पत्र विभिन्न राजनीतिक दलों (विशेषकर भाजपा और क्षेत्रीय दलों) की चुनावी रणनीतियों, उनके पसमंदा आउटरीच कार्यक्रमों और विधायी निकायों (लोकसभा व विधानसभाओं) में पसमंदा समुदाय के वास्तविक प्रतिनिधित्व के आंकड़ों का विश्लेषण करता है। शोध के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि यद्यपि पसमंदा विमर्श ने मुस्लिम समुदाय के भीतर के सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) को मुख्यधारा की बहस में लाकर अल्पसंख्यक राजनीति का वैचारिक लोकतंत्रीकरण किया है, किंतु वास्तविक चुनावी टिकटों के वितरण और सत्ता के विकेंद्रीकरण में पसमंदा समाज की भागीदारी अभी भी उनकी आबादी के अनुपात में अत्यंत न्यून है। अंततः, यह पेपर यह तर्क देता है कि अल्पसंख्यक राजनीति का वास्तविक लोकतंत्रीकरण केवल प्रतीकात्मक विमर्श से नहीं, बल्कि ठोस नीतिगत सुधारों और आनुपातिक विधायी प्रतिनिधित्व से ही संभव होगा।

मुख्य शब्द : पसमंदा, अशरफ, अल्पसंख्यक राजनीति,

लोकतंत्रीकरण, चुनावी प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय, भारतीय राजनीति।

प्रस्तावना : भारतीय लोकतंत्र और उसकी चुनावी राजनीति के ताने-बाने में 'अल्पसंख्यक' पहचान, विशेषकर मुस्लिम समुदाय, हमेशा से एक केंद्रीय और जटिल विमर्श का विषय रही है। स्वतंत्रता के बाद से ही भारतीय धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक समावेशन की बहसों में मुस्लिम समुदाय को अक्सर एक समरूप, अखंड और एकल खंड के रूप में देखा जाता रहा है (Anwar, 2001)। राजनीति विज्ञान के पारंपरिक सिद्धांतों और चुनावी रणनीतियों में भी 'मुस्लिम वोट बैंक' की अवधारणा को इसी एकसार पहचान के चरमे से परिभाषित किया गया। हालांकि, समकालीन भारतीय राजनीति, विशेषकर मंडल-उत्तर काल और हाल के दशकों में, इस पारंपरिक 'पहचान-आधारित अल्पसंख्यक राजनीति' के भीतर एक गंभीर आंतरिक मंथन और दरार देखी जा रही है। इस दरार की मुख्य धुरी मुस्लिम समाज के भीतर का आंतरिक सामाजिक-आर्थिक स्तरीकरण और 'अशरफ बनाम पसमंदा' का उभरता हुआ विमर्श है (Ansari, 2011)।

इस्लाम का सैद्धांतिक ढांचा यद्यपि पूर्ण समतावाद पर आधारित है, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में आने के बाद, व्यावहारिक स्तर पर यह यहां की हिंदू जाति व्यवस्था के प्रभावों से अछूता नहीं रह सका। समाजशास्त्री अहमद (1978) ने अपने ऐतिहासिक अध्ययनों में यह स्थापित किया था कि भारतीय मुसलमान सैद्धांतिक रूप से भले ही एक उम्माह (धार्मिक समुदाय) का हिस्सा हों, लेकिन सामाजिक और व्यावहारिक स्तर पर वे कई जातियों और उप-जातियों में बंटे हुए हैं। व्यापक रूप से इन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

1. **अशरफ (Ashraf):** उच्च जाति/वर्ग के मुस्लिम (जैसे सैय्यद, शेख, पठान, मुगल) जो स्वयं को विदेशी मूल का या उच्च हिंदू जातियों से धर्मांतरित मानते हैं।
2. **अजलफ (Ajlaf):** पिछड़े वर्ग के मुस्लिम (जैसे अंसारी, कुरैशी, मंसूरी, राईन) जो पारंपरिक रूप से दस्तकार या शिल्पी रहे हैं।
3. **अरजल (Arzal):** अछूत या दलित पृष्ठभूमि से आने वाले मुस्लिम (जैसे हलालखोर, भंगी, लालबेगी)। उत्तरार्द्ध की दोनों श्रेणियों (अजलफ और अरजल) को सम्मिलित रूप से 'पसमंदा' कहा जाता है, जो फ़ारसी भाषा का शब्द है और जिसका अर्थ है "पीछे छूटे हुए लोग" (Ali, 2005)।

समस्या का सबसे संवेदनशील पहलू यह है कि इस सामाजिक विभाजन का सीधा असर राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद से लेकर 20वीं सदी के अंत तक, भारत की अल्पसंख्यक राजनीति का एजेंडे और उसके नेतृत्व पर 'अशरफ अभिजात वर्ग' का पूर्ण वर्चस्व रहा (Alam, 2009)। इस नेतृत्व ने अल्पसंख्यक विमर्श को मुख्य रूप से धार्मिक और भावनात्मक मुद्दों—जैसे कि मुस्लिम पर्सनल लॉ की सुरक्षा, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (AMU) का अल्पसंख्यक दर्जा, उर्दू भाषा का संरक्षण और बाबरी मस्जिद विवाद—के इर्द-गिर्द केंद्रित रखा। इसके विपरीत, पसमंदा समुदाय—जो कि भारतीय मुसलमानों की कुल आबादी का लगभग 85% हिस्सा है—की बुनियादी जरूरतें जैसे कि शिक्षा, रोजगार, भूमि सुधार, आरक्षण और चुनावी प्रतिनिधित्व पूरी तरह से हाशिये पर ढकेल दी गईं (Fazal, 2014)।

सचर कमेटी रिपोर्ट (2006) और **रंगनाथ मिश्र आयोग** के आंकड़ों ने पहली बार आधिकारिक तौर पर यह उजागर किया कि भारतीय मुसलमानों की एक बहुत बड़ी आबादी (जो मुख्य रूप से पसमंदा है) सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक मोर्चे पर अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के समकक्ष या उनसे भी बदतर स्थिति में जीवन यापन कर रही है।

1990 के दशक में मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद, पसमंदा आंदोलन ने एक संगठित रूप लिया। अली अनवर के 'ऑल इंडिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा' और डॉ. एजाज अली के 'मुस्लिम दलित आंदोलन' ने इस बात को पुरजोर तरीके से उठाया कि 'अल्पसंख्यकवाद' की आड़ में अशरफ नेतृत्व ने पसमंदा समाज के अधिकारों का हनन किया है (Anwar, 2001)। पसमंदा विमर्श का मुख्य तर्क यह है कि धर्मनिरपेक्ष

और मंडलवादी राजनीतिक दलों (जैसे कांग्रेस, सपा, राजद) ने पसमंदा मुसलमानों के केवल 'वोट' लिए, लेकिन जब सत्ता और विधायी निकायों (लोकसभा और राज्य विधानसभाओं) में 'टिकट और प्रतिनिधित्व' देने की बारी आई, तो वे हमेशा अशरफ उम्मीदवारों को प्राथमिकता देते रहे (Jamil, 2017)।

समकालीन राजनीतिक परिदृश्य (विशेषकर 2014 के बाद) में यह विमर्श और भी तीव्र हो गया है। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा पसमंदा मुस्लिमों की ओर बढ़ाया गया हाथ और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा अपनी राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठकों में पसमंदा समुदाय के सामाजिक-आर्थिक उत्थान और उनके राजनीतिक समावेशन की वकालत ने इस बहस को एक नया चुनावी मोड़ दे दिया है (Verma, 2023)। इसने जहां एक तरफ पारंपरिक धर्मनिरपेक्ष दलों को अपनी रणनीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया है, वहीं दूसरी तरफ अल्पसंख्यक राजनीति के भीतर 'लोकतंत्रीकरण' (Democratization) की प्रक्रिया को तेज कर दिया है। पसमंदा विमर्श अब केवल एक सामाजिक आंदोलन नहीं, बल्कि एक निर्णायक चुनावी कारक बन चुका है।

प्रस्तुत शोध पत्र इसी पृष्ठभूमि में यह समझने का प्रयास करता है कि 'अशरफ बनाम पसमंदा' का यह समकालीन विमर्श किस प्रकार अल्पसंख्यक राजनीति के पारंपरिक सिद्धांतों को बदल रहा है। यह शोध इस बात का समालोचनात्मक मूल्यांकन करेगा कि क्या यह आंतरिक संघर्ष वास्तव में मुस्लिम समुदाय के भीतर राजनीतिक सत्ता के लोकतंत्रीकरण और आनुपातिक चुनावी प्रतिनिधित्व की ओर ले जा रहा है, या फिर यह समकालीन चुनावी राजनीति में बहुसंख्यक वादी वर्चस्व द्वारा अल्पसंख्यक राजनीतिक लामबंदी को खंडित करने का मात्र एक रणनीतिक औजार बन कर रह गया है।

साहित्य की समीक्षा : प्रस्तुत शोध विषय—“अल्पसंख्यक राजनीति का लोकतंत्रीकरण: समकालीन भारतीय राजनीति में 'अशरफ बनाम पसमंदा' विमर्श और चुनावी प्रतिनिधित्व”—पर मौजूद अकादमिक विमर्श का विश्लेषण करने के लिए उपलब्ध साहित्य को चार प्रमुख वैचारिक श्रेणियों (Themes) में विभाजित किया जा सकता है। यह समीक्षा इस बात को रेखांकित करती है कि कैसे समय के साथ अल्पसंख्यक विमर्श धार्मिक पहचान से हटकर सामाजिक-आर्थिक न्याय की ओर मुड़ा है।

1. भारतीय मुस्लिम समाज में जाति और सामाजिक स्तरीकरण : पारंपरिक रूप से इस्लामी धर्मशास्त्र समानता पर बल देता है, लेकिन समाजशास्त्रीय अध्ययनों ने यह साबित किया है कि भारतीय उपमहाद्वीप में व्यावहारिक स्तर पर मुस्लिम समाज गहरी जातिगत रुढ़ियों से ग्रस्त है।

- **इम्तियाज अहमद (1973, 1978):** अपने अग्रणी कार्यों में अहमद ने अनुभवजन्य (Empirical) साक्ष्यों के माध्यम से स्थापित किया कि भारतीय मुसलमानों में न केवल हिंदू जाति व्यवस्था के तत्व मौजूद हैं, बल्कि विवाह (Endogamy) और व्यवसायों के स्तर पर भी कठोर विभाजन है। उन्होंने मुस्लिम समाज को 'अशरफ' (अभिजात) और 'गैर-अशरफ' (पिछड़े/दस्तकार) के रूप में वर्गीकृत किया।
- **गौस अंसारी (1960):** अंसारी ने उत्तर प्रदेश के मुसलमानों का अध्ययन कर यह दर्शाया कि कैसे मुस्लिम समाज में 'सैय्यद' और 'शेख' जैसी उच्च जातियों को सामाजिक पदानुक्रम में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जबकि 'कंजड़े', 'धोबी' और 'हलालखोर' जैसी जातियों को अछूत या निम्नतर (Arzal) माना जाता है।
- **जी. अली असगर (2004):** इनका तर्क है कि मुस्लिम समाज के इस आंतरिक विभाजन को 'उम्माह' (वैश्विक मुस्लिम भाईचारा) की धार्मिक अवधारणा के पीछे जानबूझकर छिपाया गया, जिससे सामाजिक असमानता को कभी संस्थागत चुनौती नहीं मिल सकी।

2. पारंपरिक 'अल्पसंख्यक विमर्श' और अशरफ वर्चस्व : स्वतंत्रता के बाद के भारत में अल्पसंख्यक राजनीति के स्वरूप और उसके नेतृत्व पर उपलब्ध साहित्य यह दर्शाता है कि कैसे कुछ खास मुद्दों को ही 'मुस्लिम मुद्दे' मान लिया गया।

- **अनवर आलम (2009):** आलम तर्क देते हैं कि आजादी के बाद कांग्रेस और अन्य धर्मनिरपेक्ष दलों ने मुस्लिम समाज के भीतर केवल 'अशरफ संग्रहित वर्ग' (Ashraf Elite) से संवाद किया। इस नेतृत्व ने अपनी

राजनीतिक प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए अल्पसंख्यक विमर्श को धर्म, शरिया कानून की सुरक्षा, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक दर्जे और उर्दू भाषा जैसे भावनात्मक मुद्दों तक सीमित रखा।

- **तनवीर फजल (2014):** फजल का विश्लेषण दिखाता है कि 'सुरक्षा और पहचान' (Security and Identity) के नैरेटिव ने पसमंदा मुसलमानों के 'विकास और प्रतिनिधित्व' (Development and Representation) के एजेंडे को दबा दिया। बहुसंख्यकवाद के डर का इस्तेमाल करके मुस्लिम समाज के भीतर एक कृत्रिम एकता दिखाई गई, जिसने आंतरिक लोकतंत्रीकरण को बाधित किया।

3. पसमंदा आंदोलन का उभार और 'लोकतंत्रीकरण' का सिद्धांत : 1990 के दशक के उत्तर-मंडल काल में मुस्लिम समाज के भीतर से उठे सुधारवादी आंदोलनों पर केंद्रित साहित्य इस विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है।

- **अली अनवर (2001, 2005):** अपनी युगांतकारी पुस्तक '*मसावात की जंग*' (The Battle for Equality) में बिहार के संदर्भ में अनवर ने तर्क दिया कि 'अल्पसंख्यक' शब्द अपने आप में एक धोखा है, जो बहुसंख्यक पसमंदा (85%) पर अल्पसंख्यक अशरफ (15%) के वर्चस्व को छुपाता है। उन्होंने नारा दिया— "*प्रगतिशील गैर-मुस्लिम, प्रतिक्रियावादी मुस्लिम से बेहतर है।*" यह अल्पसंख्यक राजनीति के लोकतंत्रीकरण की दिशा में पहला ठोस वैचारिक कदम था।
- **खालिद अनीस अंसारी (2011, 2016):** अंसारी पसमंदा विमर्श को 'उत्तर-अल्पसंख्यक राजनीति' (Post-Minority Politics) के रूप में देखते हैं। उनका तर्क है कि पसमंदा विमर्श ने 'धार्मिक पहचान' (Religious Identity) की राजनीति को 'नागरिकता और अधिकार' (Franchise and Constitutional Rights) की राजनीति में बदल दिया है। यह आंदोलन मुस्लिम समुदाय के भीतर लोकतंत्र को गहरे स्तर पर ले जाने का प्रयास है।

4. समकालीन चुनावी राजनीति और प्रतिनिधित्व का यथार्थ : हाल के वर्षों में राजनीतिक दलों द्वारा पसमंदा कार्ड खेलने और वास्तविक प्रतिनिधित्व के आंकड़ों पर विमर्श तेजी से बढ़ा है।

- **सच्चर कमेटी रिपोर्ट (2006):** इस आधिकारिक दस्तावेज ने अकादमिक जगत को हिलाकर रख दिया। रिपोर्ट ने स्पष्ट किया कि मुसलमानों की बदहाली के लिए केवल बाहरी कारक जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि मुस्लिम समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा (जो पसमंदा है) आर्थिक और शैक्षणिक रूप से दलितों से भी बदतर स्थिति में है।
- **गजला जमील (2017) और ए. वर्मा (2023):** इनका समकालीन अध्ययन (विशेषकर 2014 के बाद की राजनीति पर) यह दिखाता है कि भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की 'पसमंदा आउटरीच' रणनीति दरअसल पारंपरिक धर्मनिरपेक्ष दलों के 'मुस्लिम वोट बैंक' को खंडित करने की एक सोची-समझी चुनावी रणनीति है।
- **त्रिवेदी सेंटर फॉर पॉलिटिकल डेटा (TCPD):** इनके द्वारा जारी चुनावी आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि संसद और विधानसभाओं में भेजे जाने वाले मुस्लिम प्रतिनिधियों में आज भी 70% से अधिक उम्मीदवार अशरफ जातियों से होते हैं। यानी, वैचारिक धरातल पर पसमंदा विमर्श जितना मजबूत हुआ है, चुनावी टिकट वितरण के व्यावहारिक धरातल पर उसकी प्रगति उतनी ही धीमी है।

शोध अंतराल : मौजूदा साहित्य की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि: मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था और पसमंदा आंदोलन के इतिहास पर पर्याप्त लेखन हुआ है। लेकिन, समकालीन चुनावी राजनीति में (विशेषकर 2019 और उसके बाद के चुनावों में) विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा पसमंदा समुदाय को दिए गए वास्तविक टिकटों, उनके नेतृत्व विकास, और उनके वास्तविक विधायी प्रतिनिधित्व का जिला-वार या राज्य-वार मात्रात्मक विश्लेषण अभी भी बहुत सीमित है।

प्रस्तुत शोध पत्र इसी 'शोध अंतराल' को भरने का प्रयास करता है, जहां विमर्श के साथ-साथ प्रतिनिधित्व के वास्तविक आंकड़ों का समालोचनात्मक मूल्यांकन किया जाएगा।

शोध कार्यप्रणाली : प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य समकालीन भारतीय राजनीति में 'अशरफ बनाम पसमंदा' विमर्श के उभार और इसके परिणामस्वरूप मुस्लिम समुदाय के चुनावी प्रतिनिधित्व में आए बदलावों का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना है। इस जटिल सामाजिक-राजनीतिक विषय के सटीक विश्लेषण के लिए एक मिश्रित शोध कार्यप्रणाली को अपनाया गया है, जिसके अंतर्गत गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के डेटा का संयोजन किया गया है।

1. शोध का स्वरूप : यह शोध मुख्य रूप से वर्णनात्मक (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति का है।

- वर्णनात्मक: यह पसमंदा आंदोलन के ऐतिहासिक विकास और अल्पसंख्यक राजनीति के वैचारिक रूपांतरण को रेखांकित करता है।
- विश्लेषणात्मक: यह समकालीन चुनावों (विशेषकर 2014 के बाद के आम चुनाव और उत्तर प्रदेश/बिहार जैसे राज्यों के विधानसभा चुनाव) के आंकड़ों का विश्लेषण कर वास्तविक प्रतिनिधित्व की स्थिति को मापता है।

2. शोध के प्रश्न (Research Questions) : शोध की दिशा को केंद्रित रखने के लिए निम्नलिखित तीन मुख्य प्रश्नों को आधार बनाया गया है:

1. पसमंदा विमर्श ने पारंपरिक भारतीय 'अल्पसंख्यक राजनीति' के एजेंडे को किस हद तक बदला है?
2. 2014 के बाद के चुनावी परिदृश्य में विभिन्न राजनीतिक दलों (दक्षिणपंथी और मंडलवादी/धर्मनिरपेक्ष दोनों) की पसमंदा रणनीति का स्वरूप क्या है?
3. क्या इस विमर्श के बाद विधायी निकायों (संसद और विधानसभाओं) में पसमंदा समुदाय के उम्मीदवारों को टिकट वितरण और प्रतिनिधित्व में आनुपातिक हिस्सेदारी मिली है?

3. डेटा संग्रह के स्रोत (Sources of Data Collection) : शोध को प्रामाणिक बनाने के लिए डेटा को दो प्रमुख श्रेणियों से संकलित किया गया है:

क) प्राथमिक स्रोत (Primary Sources):

- **चुनावी डेटा:** 'त्रिवेदी सेंटर फॉर पॉलिटिकल डेटा' (TCPD-Ashoka University) और भारत निर्वाचन आयोग (ECI) की आधिकारिक वेबसाइट से चुने गए मुस्लिम विधायकों और सांसदों की जातिगत पृष्ठभूमि का डेटा।
- **सर्वेक्षण और रिपोर्ट्स:** सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज (CSDS-Lokniti) के चुनाव-उत्तर (Post-Poll) सर्वेक्षणों के आंकड़े।
- **आधिकारिक दस्तावेज:** सच्चर कमेटी रिपोर्ट (2006), रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट और विभिन्न राजनीतिक दलों के चुनावी घोषणापत्र (Manifestos)।
- **साक्षात्कार (Interviews):** प्रमुख पसमंदा बुद्धिजीवियों, नेताओं (जैसे अली अनवर, खालिद अनीस अंसारी) और राजनीतिक विश्लेषकों के दिए गए वक्तव्य और साक्षात्कार।

ख) द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources):

- प्रतिष्ठित सह-कर्मि समीक्षित अकादमिक जर्नल (Peer-reviewed Journals) जैसे *Economic and Political Weekly (EPW)*, *Studies in Indian Politics*, और *Journal of Muslim Minority Affairs* में प्रकाशित शोध पत्र।
- प्रासंगिक पुस्तकें, समाचार पत्र (The Hindu, Indian Express), डिजिटल अकादमिक पोर्टल और पसमंदा संगठनों के नीतिगत पर्चे (Pamphlets)।

4. शोध का दायरा और भौगोलिक सीमा (Scope and Geographical Delimitation) : यह शोध पूरे भारत के संदर्भ को ध्यान में रखता है, लेकिन विशेष ध्यान उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों पर केंद्रित है। इसका कारण यह है कि:

- ये दोनों राज्य 'मंडल राजनीति' (Mandal Politics) के गढ़ रहे हैं।
- पसमंदा आंदोलन की वैचारिक और राजनीतिक लामबंदी ऐतिहासिक और समकालीन रूप से इन्हीं राज्यों में सबसे मुखर रही है।
- **समय सीमा (Temporal Scope):** शोध मुख्य रूप से 2014 से 2026 तक के समकालीन राजनीतिक घटनाक्रमों और चुनावों पर केंद्रित है, क्योंकि इसी कालखंड में 'पसमंदा आउटरीच' मुख्यधारा की चुनावी राजनीति के केंद्र में आया है।

5. डेटा विश्लेषण की रूपरेखा (Data Analysis Framework) : प्राप्त डेटा का विश्लेषण करने के लिए निम्नलिखित दृष्टिकोण अपनाए जाएंगे:

विश्लेषण का प्रकार	विधि / टूल्स	उद्देश्य
गुणात्मक विश्लेषण	विषय-वस्तु विश्लेषण	राजनीतिक दलों के भाषणों, घोषणापत्रों और नैरेटिव में 'पसमंदा' शब्द के उपयोग और प्राथमिकताओं का अध्ययन करना।
मात्रात्मक विश्लेषण	सांख्यिकीय तुलना	चुने गए मुस्लिम प्रतिनिधियों में 'अशरफ' बनाम 'पसमंदा' जातियों के अनुपात की तुलना करना।

6. शोध की सीमाएं (Limitations of the Research)

- भारत में आधिकारिक तौर पर जातिगत जनगणना (Caste Census) के अद्यतन राष्ट्रीय आंकड़ों की अनुपलब्धता के कारण, उम्मीदवारों की जाति का निर्धारण उनके उपनामों (Surnames), स्थानीय समाजशास्त्रीय अध्ययनों और राजनीतिक कयासों पर आधारित होता है, जिसमें आंशिक त्रुटि की संभावना हो सकती है।
- मुस्लिम समाज में 'जाति' को लेकर व्यक्त की जाने वाली सामाजिक हिचकिचाहट के कारण कई बार जमीनी स्तर पर डेटा का एकत्रीकरण अत्यंत जटिल हो जाता है।

विश्लेषण :

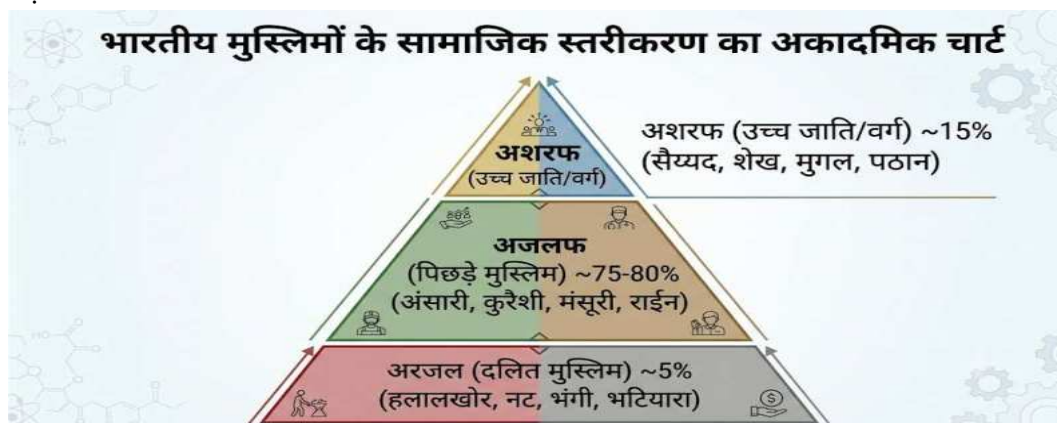
- **भारतीय मुस्लिम समाज में सामाजिक स्तरीकरण और पसमंदा आंदोलन का इतिहास**

1. इस्लामी समतावाद बनाम भारतीय सामाजिक यथार्थ : सैद्धांतिक रूप से, इस्लाम एक पूर्णतः समतावादी (Egalitarian) धर्म है जहाँ जन्म, जाति या वंश के आधार पर किसी भी भेदभाव को खारिज किया गया है। पवित्र कुरान और पैगंबर मोहम्मद के विदाई उपदेश (Khutbah) में स्पष्ट कहा गया है कि किसी भी अरब को गैर-अरब पर और किसी गोरे को काले पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है; श्रेष्ठता का एकमात्र मापदंड 'तकवा' (ईश-परायणता) है।

हालांकि, जब इस्लाम ने भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश किया, तो यहाँ की सदियों पुरानी और मजबूत हिंदू जाति व्यवस्था (Caste System) के साथ अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यावहारिक स्तर पर एक सामाजिक पदानुक्रम का निर्माण हुआ। समाजशास्त्री **इम्तियाज अहमद (1978)** के अनुसार, भारतीय मुसलमानों में जाति व्यवस्था पूरी तरह से हिंदू व्यवस्था जैसी तो नहीं है (क्योंकि यहाँ कोई धार्मिक या आध्यात्मिक मंजूरी नहीं है), लेकिन सामाजिक लेन-देन, विवाह (Endogamy), और श्रम के विभाजन (Division of Labour) के स्तर पर यह बिल्कुल वैसी ही कठोरता प्रदर्शित करती है।

2. मुस्लिम समाज का त्रिपक्षीय जातिगत स्तरीकरण (The Tripartite Stratification) : भारतीय मुस्लिम समाज मुख्य रूप से तीन सामाजिक श्रेणियों में विभाजित है। राजनीतिक वैज्ञानिक और समाजशास्त्री इसे एक

पिरामिड संरचना के रूप में देखते हैं, जहाँ जनसंख्या के लिहाज से सबसे छोटा वर्ग शीर्ष पर काबिज है और सबसे बड़ा वर्ग सबसे नीचे है:



इस सामाजिक संरचना को समझने के लिए नीचे दी गई तालिका प्रत्येक वर्ग की विशेषताओं को स्पष्ट करती है:

श्रेणी	सामाजिक पृष्ठभूमि	प्रमुख जातियाँ	जनसंख्या व स्थिति
1. अशरफ (Ashraf)	स्वयं को विदेशी मूल (अरब, फारस, तुर्क) का या उच्च हिंदू जातियों (राजपूत/ब्राह्मण) से धर्मांतरित मानते हैं।	सैय्यद, शेख, पठान, मुगल, मुस्लिम राजपूत।	लगभग 15% आबादी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद से राजनीति, शिक्षा और धार्मिक संस्थानों पर 80% से अधिक नियंत्रण।
2. अजलफ (Ajlaf)	स्थानीय स्तर पर धर्मांतरित पिछड़े वर्ग के लोग, जो पारंपरिक रूप से दस्तकार, शिल्पी या खेतिहर रहे हैं।	अंसारी (जुलाहा), कुरैशी (कसाई), मंसूरी (धुनिया), राईन (कुंजड़ा), इदरीसी (दर्जी)।	लगभग 75-80% आबादी। इन्हें मंडल आयोग के तहत अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) में शामिल किया गया है।
3. अरजल (Arzal)	सबसे निचली पायदान पर स्थित लोग, जो हिंदू समाज की अछूत (Dalit) पृष्ठभूमि से धर्मांतरित हुए थे।	हलालखोर (मेहतर), लालबेगी, भंगी, नट, धोबी, भटियारा।	लगभग 5% आबादी। अत्यंत दयनीय स्थिति, इन्हें समाज में आज भी सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

पसमंदा शब्द की परिभाषा : फ़ारसी भाषा के शब्द 'पसमंदा' का अर्थ है "पीछे छोटे हुए लोग"। पसमंदा आंदोलन के तहत 'अजलफ' और 'अरजल' दोनों श्रेणियों को एक साथ मिलाकर एक वृहद शोषित पहचान दी गई है, जो कुल मुस्लिम आबादी का लगभग 85% हिस्सा है।

3. पसमंदा आंदोलन का ऐतिहासिक विकासक्रम : मुस्लिम समाज में अशरफ वर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोध की आवाजें 20वीं सदी की शुरुआत से ही उठने लगी थीं, लेकिन इन्हें संगठित राजनीतिक धार 1990 के दशक में मिली। इस ऐतिहासिक विकासक्रम को नीचे दिए गए घटनाक्रम के माध्यम से समझा जा सकता है:



प्रमुख ऐतिहासिक पड़ाव :

- **मोमिन कॉन्फ्रेंस (1920-1940 का दशक):** पसमंदा चेतना की शुरुआत बुनकरों (अंसारियों) के संगठन से हुई। अब्दुल कय्यूम अंसारी के नेतृत्व में मोमिन कॉन्फ्रेंस ने मोहम्मद अली जिन्ना की 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' (Two-Nation Theory) और पाकिस्तान की मांग का पुरजोर विरोध किया था। उनका तर्क था कि प्रस्तावित पाकिस्तान केवल अशरफ नवाबों और जमींदारों का देश होगा, न कि गरीब आम मुसलमानों का।
- **उत्तर-मंडल काल और नया उभार (1990 का दशक):** वी.पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद मुस्लिम समाज के भीतर की पिछड़ी जातियों को यह अहसास हुआ कि उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अशरफ मुसलमानों से बिल्कुल अलग है।
- **'मसावात की जंग' और वैचारिक क्रांति (2000 का दशक):** पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता **अली अनवर** ने अपनी पुस्तक *'मसावात की जंग'* (2001) के माध्यम से पसमंदा विमर्श को एक नई वैचारिक दिशा दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि अल्पसंख्यक राजनीति की आड़ में अशरफ संभ्रांत वर्ग ने मुस्लिम समुदाय के भीतर लोकतंत्र का गला घोट रखा है। उन्होंने नारा दिया कि मुस्लिम समाज की लड़ाई मस्जिदों या मजहब की नहीं, बल्कि अधिकारों और सामाजिक न्याय की है।

ऐतिहासिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि भारतीय मुस्लिम समाज कभी भी एक अखंड इकाई नहीं रहा है। आंतरिक जातिगत शोषण और राजनीतिक उपेक्षा के लंबे इतिहास ने ही पसमंदा आंदोलन को जन्म दिया। यह आंदोलन धर्म के चश्मे को हटाकर राजनीति को सामाजिक न्याय की जमीन पर लाने का पहला ऐतिहासिक प्रयास था, जिसने समकालीन भारतीय राजनीति के समीकरणों को हमेशा के लिए बदल दिया।

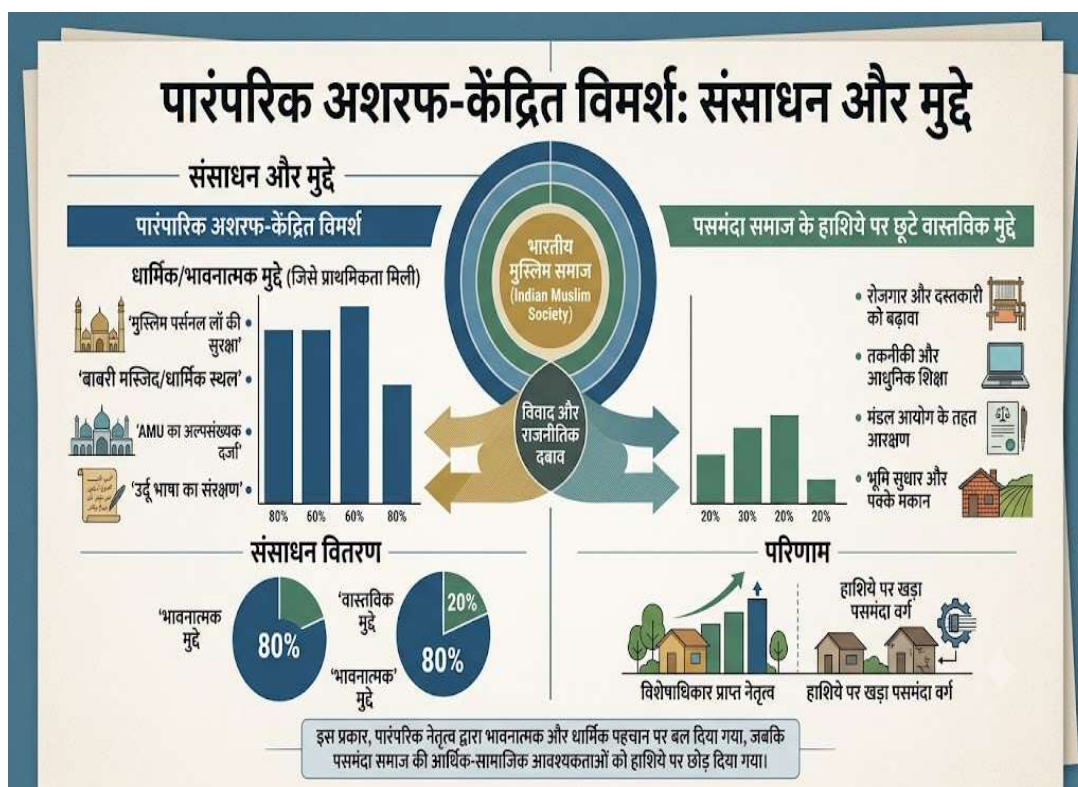
• अल्पसंख्यक राजनीति का लोकतंत्रीकरण: 'समान नागरिकता' बनाम 'धार्मिक पहचान'

1. पारंपरिक अल्पसंख्यक राजनीति का वैचारिक ढांचा : स्वतंत्रता के बाद के भारत में, धर्मनिरपेक्ष और उदारवादी दलों द्वारा संचालित अल्पसंख्यक राजनीति मुख्य रूप से "पहचान की राजनीति" पर आधारित थी। इस राजनीति का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम समुदाय को एक अखंड धार्मिक इकाई के रूप में लामबंद करना था।

राजनीतिक वैज्ञानिक **खालिद अनीस अंसारी (2016)** के अनुसार, पारंपरिक अल्पसंख्यक विमर्श दो मुख्य स्तंभों पर टिका हुआ था:

1. **सुरक्षा का नैरेटिव :** बहुसंख्यकवाद या सांप्रदायिक दंगों के भय को दिखाकर समुदाय के भीतर एक कृत्रिम एकता बनाए रखना।
2. **धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीकवाद :** विकास, शिक्षा और रोजगार के बजाय भावनात्मक और सांस्कृतिक मुद्दों को प्राथमिकता देना।

अध्याय 'ए' में वर्णित 'अशरफ संभ्रांत वर्ग' (Ashraf Elite) ने इसी पहचान की राजनीति का उपयोग करके मुस्लिम समुदाय के नेतृत्व पर अपना नियंत्रण बनाए रखा। नीचे दिया गया वैचारिक मानचित्र यह दिखाता है कि कैसे पारंपरिक नेतृत्व ने पसमंदा समाज की बुनियादी जरूरतों को हाशिये पर रखकर केवल भावनात्मक मुद्दों को मुख्यधारा में रखा:



2. 'धार्मिक पहचान' से 'समान नागरिकता' की ओर प्रस्थान : पसमंदा आंदोलन ने इस पारंपरिक राजनीति पर यह कहकर कड़ा प्रहार किया कि "अल्पसंख्यकवाद" वास्तव में अशरफ वर्ग के हितों की रक्षा करने वाली एक ढाल है। पसमंदा बुद्धिजीवियों का तर्क है कि 'अल्पसंख्यक' शब्द मुस्लिम समाज के भीतर की 85% पिछड़ी और शोषित आबादी के दर्द को छुपा लेता है।

पसमंदा विमर्श ने अल्पसंख्यक राजनीति का लोकतंत्रीकरण निम्नलिखित दो वैचारिक बदलावों के माध्यम से किया है:

क) 'धर्म' के बजाय 'अधिकार और नागरिकता' : पसमंदा विमर्श ने भारतीय संविधान के भाग 3 (मौलिक अधिकार) और भाग 4 (राज्य के नीति निर्देशक तत्व) को अपनी राजनीति का केंद्र बनाया। उन्होंने यह स्थापित किया कि एक मुस्लिम की प्राथमिक समस्या यह नहीं है कि उसका मजहब खतरे में है, बल्कि यह है कि एक नागरिक के रूप में उसे गरिमापूर्ण जीवन, सामाजिक न्याय और आनुपातिक प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है। यह 'समान नागरिकता' की मांग है, जहाँ राज्य धर्म के आधार पर नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर नागरिक से व्यवहार करे।

ख) 'भावनात्मक राष्ट्रवाद' बनाम 'सामाजिक न्याय' : पारंपरिक राजनीति में मुसलमानों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी देशभक्ति साबित करने या सांप्रदायिक ताकतों को रोकने के लिए "रणनीतिक मतदान" करें। पसमंदा आंदोलन ने इस चक्रव्यूह को तोड़ा। उन्होंने नारा दिया: "वोट हमारा, राज तुम्हारा, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।" इस चेतना ने मुस्लिम समाज के भीतर एक वर्ग-हित को जन्म दिया, जिसने धार्मिक एकजुटता के भ्रम को तोड़ दिया।

3. लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया का तुलनात्मक विश्लेषण : यह समझने के लिए कि पसमंदा विमर्श ने अल्पसंख्यक राजनीति का लोकतंत्रीकरण किस प्रकार किया है, हमें पारंपरिक दृष्टिकोण और पसमंदा दृष्टिकोण के बीच के अंतर को समझना होगा:

तुलना का बिंदु	पारंपरिक अल्पसंख्यक राजनीति (अशरफ संचालित)	आधुनिक लोकतंत्रीकृत राजनीति (पसमंदा संचालित)
मूल दर्शन (Philosophy)	समुदाय-केंद्रित: पूरे धार्मिक समुदाय को एक समान और अपरिवर्तनीय मानना।	नागरिक-केंद्रित: समुदाय के भीतर जाति, वर्ग और लैंगिक असमानता को स्वीकार करना।
मुख्य एजेंडा (Agenda)	पहचान और संरक्षण: शरिया, धार्मिक प्रतीक, और सांस्कृतिक विशेषाधिकार।	समानता और विकास: आरक्षण, सरकारी योजनाएं, रोजगार, और राजनीतिक हिस्सेदारी।
गठबंधन का स्वरूप (Alliance)	धार्मिक ध्रुवीकरण: धर्मनिरपेक्ष दलों के साथ "सुरक्षा के बदले वोट" का समझौता।	सामाजिक बहुजन गठबंधन: हिंदू दलितों, पिछड़ों (OBC) और आदिवासियों के साथ सामाजिक न्याय हेतु गठबंधन।
नेतृत्व का चरित्र (Leadership)	अभिजात वर्ग: नवाब, जमींदार, धार्मिक उलेमा और उच्च शिक्षित अशरफ।	जमीनी नेतृत्व: दस्तकार, बुनकर, और पिछड़े वर्गों से आने वाले जमीनी कार्यकर्ता।

4. वैचारिक परिणाम और चुनौतियाँ : अल्पसंख्यक राजनीति के इस लोकतंत्रीकरण ने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी तो बनाया है, लेकिन इसके सामने कुछ गंभीर वैचारिक चुनौतियाँ भी खड़ी हैं।

खालिद अनीस अंसारी के शब्दों में, यह विमर्श 'उत्तर-अल्पसंख्यक राजनीति' का सूत्रपात करता है। इसका अर्थ यह है कि अब मुसलमानों को एक अलग-थलग अल्पसंख्यक समूह के रूप में देखने के बजाय भारत के विशाल 'बहुजन/पिछड़े' समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में देखा जाना चाहिए।

हालांकि, आलोचकों का मानना है कि समकालीन दौर में जब बहुसंख्यकवादी राजनीति का उभार चरम पर है, तब मुस्लिम समुदाय के भीतर के इस आंतरिक विभाजन का उपयोग उनकी 'सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति' को कमजोर करने के लिए भी किया जा सकता है।

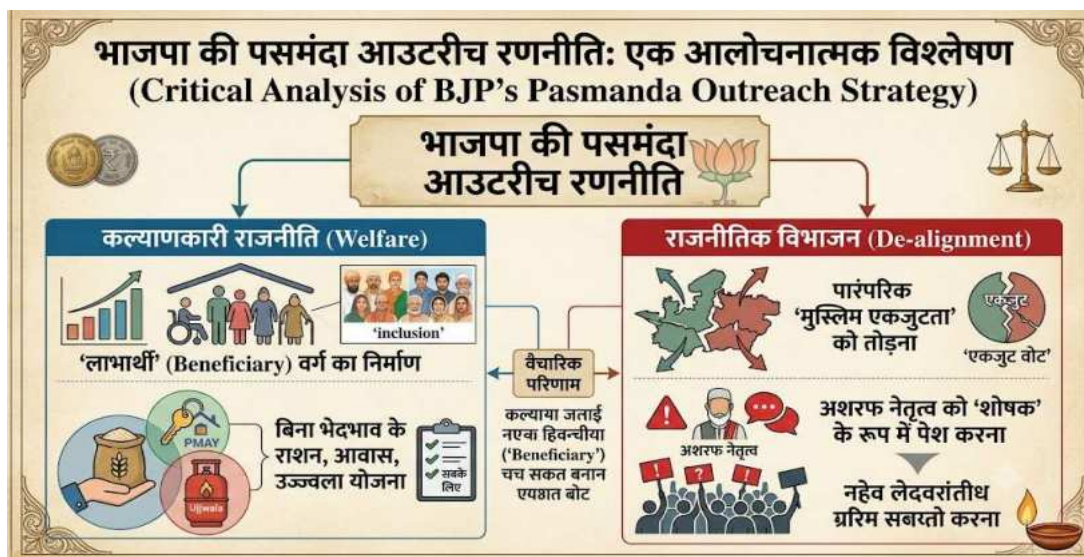
यह विश्लेषण यह प्रमाणित करता है कि 'अशरफ बनाम पसमंदा' का विमर्श केवल मुस्लिम समाज का आंतरिक विवाद नहीं है, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र के परिपक्व होने की प्रक्रिया है। इसने अल्पसंख्यक राजनीति को मस्जिदों और भावनात्मक नारों के दायरे से बाहर निकालकर संविधान, नागरिकता और सामाजिक न्याय की ठोस जमीन पर ला खड़ा किया है। यह 'धार्मिक पहचान' के ऊपर 'समान नागरिकता' की एक ऐतिहासिक विजय है।

• समकालीन चुनावी राजनीति और राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण

1. समकालीन चुनावी परिदृश्य और वैचारिक यू-टर्न (The Post-2014 Shift) : 2014 के बाद से भारतीय राजनीति के चुनावी ढर्रे में एक बड़ा संरचनात्मक बदलाव आया है। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के प्रभुत्व वाले इस दौर में पारंपरिक 'मुस्लिम वोट बैंक' की राजनीति और 'तुष्टीकरण' के नैरेटिव को भारी चुनावी धक्का लगा। इस बदलते दौर में, राजनीतिक दलों के लिए मुस्लिम समुदाय को एक अखंड वोट बैंक के रूप में देखना न केवल चुनावी रूप से घाटे का सौदा साबित हुआ, बल्कि इसने बहुसंख्यक वोटों के ध्रुवीकरण को भी तेज किया।

इसी संकट के बीच 'पसमंदा' विमर्श मुख्यधारा की चुनावी राजनीति के केंद्र में आया। जहां एक तरफ दक्षिणपंथी राजनीति ने इसे मुस्लिम समाज के भीतर पैठ बनाने के औजार के रूप में देखा, वहीं दूसरी तरफ खुद को धर्मनिरपेक्ष और मंडलवादी कहने वाले दलों को अपनी पुरानी रणनीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

2. भारतीय जनता पार्टी (BJP) का पसमंदा आउटरीच: रणनीति और उद्देश्य : भाजपा की चुनावी रणनीति में पसमंदा मुसलमानों की एंट्री को एक बड़े 'पैराडाइम शिफ्ट' के रूप में देखा जाता है। इस रणनीति की आधिकारिक शुरुआत प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के बयानों से हुई।



क) 'लाभार्थी' मॉडल : भाजपा ने पसमंदा समाज तक पहुंचने के लिए सीधे तौर पर केंद्र और राज्य सरकार की कल्याणकारी योजनाओं को माध्यम बनाया। चूँकि पसमंदा मुसलमान आर्थिक रूप से बेहद पिछड़े हैं, इसलिए राशन, प्रधानमंत्री आवास योजना, और आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं के सबसे बड़े लाभार्थियों में वे शामिल हैं। भाजपा ने राजनीतिक रूप से यह नैरेटिव सेट किया कि "तुष्टीकरण के बिना विकास" के जरिए सीधे गरीब मुसलमानों (पसमंदा) को फायदा पहुंचाया जा रहा है, जिसे पारंपरिक सेकुलर दलों ने सिर्फ वोट बैंक समझा था।

ख) राजनीतिक और प्रतीकात्मक समावेशन

- **संगठनात्मक स्तर पर:** भाजपा ने अपने अल्पसंख्यक मोर्चे में पसमंदा समुदाय से आने वाले चेहरों (जैसे उत्तर प्रदेश सरकार में मंत्री रहे दानिश आजाद अंसारी) को महत्वपूर्ण पदों पर जगह दी।
- **चुनावी टिकट:** यद्यपि भाजपा ने लोकसभा या विधानसभा चुनावों में मुस्लिम उम्मीदवारों को टिकट देने में अत्यधिक संकोच दिखाया है, लेकिन स्थानीय निकाय (Local Body) और पसमंदा बहुल क्षेत्रों के उप-चुनावों में पार्टी ने रणनीतिक तौर पर पसमंदा उम्मीदवारों को मैदान में उतारा है।

3. विपक्षी और क्षेत्रीय दलों (सपा, राजद, कांग्रेस) का दृष्टिकोण और हिचकिचाहट : पसमंदा विमर्श ने समाजवादी पार्टी (SP), राष्ट्रीय जनता दल (RJD) और कांग्रेस जैसी 'मंडलवादी' व धर्मनिरपेक्ष पार्टियों के सामने एक वैचारिक संकट खड़ा कर दिया है।

ऐतिहासिक रूप से, ये दल 'MY' (मुस्लिम + यादव) या 'अल्पसंख्यक + दलित/पिछड़ा' सामाजिक गठबंधन के सहारे सत्ता में आते रहे हैं। लेकिन इस गठबंधन के भीतर जो मुस्लिम प्रतिनिधित्व था, वह मुख्य रूप से अशरफ जातियों के हाथों में सुरक्षित रहा (जैसे सपा में आजम खान या राजद में शहाबुद्दीन व अब्दुल बारी सिद्दीकी)।

जब पसमंदा विमर्श ने जोर पकड़ा, तो इन दलों के सामने निम्नलिखित चुनौतियाँ आईं:

1. **अशरफ नेतृत्व की नाराजगी का डर:** यदि ये दल खुलकर पसमंदा जातियों को आनुपातिक टिकट देने की बात करते, तो दशकों से उनके साथ खड़ा मजबूत और साधन-संपन्न अशरफ नेतृत्व (जो धार्मिक संस्थाओं और मुस्लिम वोटों को नियंत्रित करता है) नाराज हो सकता था।
2. **चुनावी मजबूरी:** भाजपा द्वारा पसमंदा काई खेले जाने के बाद, इन दलों ने भी 'अल्पसंख्यक' शब्द के बजाय सीधे 'अंसारी, कुरैशी, मंसूरी' जैसी पिछड़ी मुस्लिम जातियों का नाम लेना और उनके सम्मेलनों को आयोजित करना शुरू किया है।

4. राजनीतिक दृष्टिकोण का तुलनात्मक विश्लेषण : विभिन्न राजनीतिक विचारधाराएं इस विमर्श को किस नजरिए से देखती हैं, इसे नीचे दी गई तालिका के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है:

राजनीतिक दल / विचारधारा	पसमंदा विमर्श को देखने का दृष्टिकोण (Perspective)	चुनावी रणनीति (Electoral Strategy)	वास्तविक उद्देश्य / अंतर्निहित एजेंडा
भारतीय जनता पार्टी (BJP)	इसे मुस्लिम समाज के भीतर के 'आंतरिक सामाजिक अन्याय' के रूप में देखती है।	कल्याणकारी योजनाओं (Welfare Politics) और 'लाभार्थी वर्ग' के जरिए आउटरीच।	सेकुलर दलों के 'मुस्लिम वोट बैंक' को खंडित करना और अपने लिए एक नरम/स्वीकार्य नैरेटिव बनाना।
क्षेत्रीय / मंडलवादी दल (SP, RJD, JDU)	शुरुआत में उपेक्षा की, लेकिन अब इसे 'सामाजिक न्याय' के अधूरे एजेंडे के रूप में स्वीकार कर रहे हैं।	पिछड़ी मुस्लिम जातियों के अलग से सम्मेलन करना और टिकटों में आंशिक हिस्सेदारी बढ़ाना।	अपने पारंपरिक 'मुस्लिम-पिछड़ा' सामाजिक गठबंधन को बिखरने से बचाना।
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	इसे 'जातिगत जनगणना' (Caste Census) और 'जितनी आबादी, उतना हक' के व्यापक राष्ट्रीय विमर्श से जोड़कर देखती है।	मुस्लिम समाज के भीतर भी आर्थिक और जातिगत सर्वे की वकालत करना।	व्यापक सामाजिक न्याय के बैनर तले पसमंदा और अशरफ दोनों को अपने पाले में वापस लाना।

5. आलोचनात्मक मूल्यांकन: कथनी बनाम करनी : समकालीन चुनावी राजनीति में पसमंदा विमर्श का उपयोग एक "चुनावी नैरेटिव" के रूप में तो खूब हुआ है, लेकिन जब वास्तविक सत्ता और विधायी प्रतिनिधित्व साझा करने की बारी आती है, तो सभी दलों का रवैया लगभग एक जैसा दिखाई देता है।

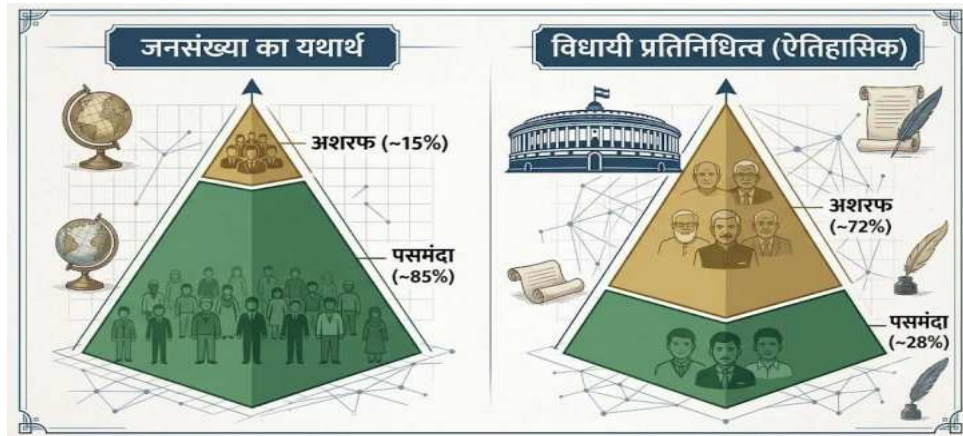
राजनीतिक विश्लेषक **ए. वर्मा (2023)** के अनुसार, "राजनीतिक दलों के लिए पसमंदा विमर्श एक ऐसा चुनावी पता बन गया है जो विचारधाराओं की सीमा को तोड़ता है। लेकिन विडंबना यह है कि जहां दक्षिणपंथ इसका उपयोग प्रतिनिधित्व देने के बजाय धुवीकरण को काउंटर करने के लिए करता है, वहीं वाम-उदारवादी धड़ा इसे मुस्लिम समाज को बांटने की साजिश बताकर दबाने का प्रयास करता है।"

यह विश्लेषण यह साफ करता है कि समकालीन चुनावी राजनीति में 'अशरफ बनाम पसमंदा' का विमर्श अब केवल अकादमिक चर्चा का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह एक सक्रिय चुनावी रणनीति बन चुका है। इसने पारंपरिक सेकुलर दलों के 'एकसार अल्पसंख्यक' वाले नैरेटिव को ध्वस्त कर दिया है। हालांकि, राजनीतिक दलों का यह दृष्टिकोण पसमंदा समाज के वास्तविक सशक्तिकरण से ज्यादा अपने-अपने तात्कालिक चुनावी समीकरणों को साधने से प्रेरित नजर आता है।

• चुनावी प्रतिनिधित्व का यथार्थवादी मूल्यांकन

1. मुस्लिम प्रतिनिधित्व की विसंगति: जनसंख्या बनाम विधायी हिस्सेदारी : भारत की अल्पसंख्यक राजनीति का सबसे बड़ा विरोधाभास यह रहा है कि मुस्लिम समुदाय की कुल आबादी के भीतर पसमंदा समाज (अजलफ और अरजल) की हिस्सेदारी लगभग **85%** है, जबकि उच्च जाति के अशरफ मुस्लिम मात्र **15%** हैं। इसके विपरीत, जब स्वतंत्रता के बाद से लेकर अब तक के विधायी प्रतिनिधित्व (सांसदों और विधायकों की संख्या) का विश्लेषण किया जाता है, तो सत्ता का संतुलन पूरी तरह से उल्टा दिखाई देता है।

'त्रिवेदी सेंटर फॉर पॉलिटिकल डेटा' (TCPD) और विभिन्न स्वतंत्र समाजशास्त्रियों द्वारा संकलित ऐतिहासिक व समकालीन आंकड़ों के आधार पर मुस्लिम प्रतिनिधियों के भीतर जातिगत वितरण का पिरामिड नीचे दिए गए रेखाचित्र के अनुसार दिखता है:



यह सांख्यिकीय विषमता यह साबित करती है कि भारत में अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व वास्तव में **"अशरफ प्रतिनिधित्व"** बनकर रह गया था, जिसे पसमंदा आंदोलन ने चुनावी डेटा के जरिए चुनौती दी है।

2. ऐतिहासिक बनाम समकालीन प्रतिनिधित्व का डेटा विश्लेषण (1952-2024/2026) : पसमंदा राजनीति के प्रमुख शोधकर्ता और विश्लेषकों द्वारा लोकसभा के संदर्भ में जारी किए गए आंकड़े यह साफ करते हैं कि लोकतंत्र के सर्वोच्च सदन में किस वर्ग का दबदबा रहा है।

स्वतंत्रता से लेकर हालिया चुनावों तक भारतीय संसद (लोकसभा) में चुने गए कुल मुस्लिम सांसदों में 'अशरफ बनाम पसमंदा' की हिस्सेदारी को नीचे दी गई तालिका में विस्तार से समझा जा सकता है:

कालखंड / लोकसभा	कुल मुस्लिम सांसद (अनुमानित)	अशरफ सांसदों की हिस्सेदारी (%)	पसमंदा सांसदों की हिस्सेदारी (%)	मुख्य निष्कर्ष व राजनीतिक प्रवृत्ति
पहली से 14वीं लोकसभा (1952-2004)	~400 (कुल संचयी)	70% - 75%	25% - 30%	कांग्रेस के दौर में पारंपरिक अशरफ संग्रान्त वर्ग (सैय्यद, शेख) का पूर्ण राजनीतिक एकाधिकार रहा।
16वीं लोकसभा (2014-2019)	23	68%	32%	भाजपा की लहर के कारण कुल मुस्लिम सांसदों की संख्या घटी, लेकिन क्षेत्रीय दलों के टिकट पर पसमंदा अनुपात में आंशिक सुधार हुआ।
17वीं लोकसभा (2019-2024)	27	65%	35%	उत्तर प्रदेश और बिहार में समाजवादी पार्टियों और तृणमूल कांग्रेस द्वारा कुछ पिछड़ी मुस्लिम जातियों (जैसे अंसारी, सिद्दीकी) को प्राथमिकता दी गई।

कालखंड / लोकसभा	कुल मुस्लिम सांसद (अनुमानित)	अशरफ सांसदों की हिस्सेदारी (%)	पसमंदा सांसदों की हिस्सेदारी (%)	मुख्य निष्कर्ष व राजनीतिक प्रवृत्ति
18वीं लोकसभा (2024-वर्तमान)	24	62%	38%	राष्ट्रीय स्तर पर 'जातिगत जनगणना' और 'जितनी आबादी, उतना हक' के नैरेटिव के कारण इंडिया (INDIA) गठबंधन के दलों ने पसमंदा टिकटों में बढ़ोतरी की।

डेटा का मुख्य बिंदु: आंकड़ों से स्पष्ट है कि 1952 से अब तक चुने गए कुल मुस्लिम सांसदों में से लगभग दो-तिहाई से अधिक संख्या केवल 15% आबादी वाले अशरफ वर्ग की रही है। हालांकि, हाल के वर्षों में पसमंदा हिस्सेदारी में 25% से बढ़कर 38% तक का सकारात्मक सुधार देखा गया है, जो इस विमर्श के बढ़ते राजनीतिक दबाव को दर्शाता है।

3. प्रादेशिक यथार्थ: उत्तर प्रदेश और बिहार विधानसभाओं का मामला : चूंकि पसमंदा आंदोलन की राजनीतिक जमीन मुख्य रूप से हिंदी पट्टी (Hindi Belt) रही है, इसलिए उत्तर प्रदेश और बिहार के विधानसभा चुनावों का डेटा इस यथार्थ को और गहराई से उजागर करता है।

क) उत्तर प्रदेश (UP) विधानसभा का विश्लेषण : उत्तर प्रदेश में मुस्लिम आबादी लगभग 19.3% है। वर्ष 2022 के विधानसभा चुनाव में रिकॉर्ड 34 मुस्लिम विधायक चुने गए। लेकिन जब इन 34 विधायकों की आंतरिक जातियों का विश्लेषण सीएसडीएस (CSDS-Lokniti) और टीसीपीडी के सहयोग से किया गया, तो पाया गया कि इनमें से **21 विधायक अशरफ** (सैय्यद, खान, पठान) श्रेणियों से थे, जबकि पसमंदा समाज की भारी आबादी के बावजूद उन्हें केवल **13 सीटें** मिलीं। समाजवादी पार्टी जैसी मंडलवादी पार्टी ने भी टिकट वितरण में अशरफ चेहरों और पूर्व जमींदार परिवारों को प्राथमिकता दी।

ख) बिहार विधानसभा का यथार्थ : बिहार पसमंदा आंदोलन की जन्मस्थली रहा है (अली अनवर और डॉ. एजाज अली का कार्यक्षेत्र)। यहाँ राजद (RJD) और जदयू (JDU) की राजनीति के बावजूद विधानसभा में मुस्लिम प्रतिनिधित्व की धुरी आज भी काफी हद तक अशरफ केंद्रित है। सीमांचल और मिथिलांचल के क्षेत्रों में जहाँ अंसारी, राईन और कुलहैया जातियों की आबादी अत्यधिक है, वहाँ भी टिकटों का बड़ा हिस्सा 'शाह', 'सैय्यद' या 'अभिजात वर्ग' के खाते में जाता रहा है।

4. टिकट वितरण की विसंगति: राजनीतिक दलों का व्यावहारिक रवैया : यह समझने के लिए कि राजनीतिक दल चुनाव में किस प्रकार का व्यावहारिक रवैया अपनाते हैं, हमें टिकट वितरण के पैटर्न को देखना होगा। सभी प्रमुख राजनीतिक दलों की रणनीति में पसमंदा को लेकर एक साझा 'स्ट्रक्चरल गैप' (संरचनात्मक कमी) दिखाई देती है:

- **सेकुलर / क्षेत्रीय दल (SP, RJD, TMC):** ये दल मुस्लिम बहुल सीटों पर उम्मीदवार उतारते समय पसमंदा आबादी के 'वोट' पर तो भरोसा करते हैं, लेकिन 'जिताऊ उम्मीदवार' (Winnability) के नाम पर धनबल और बाहुबल से संपन्न अशरफ नेताओं को ही टिकट थमा देते हैं।
- **भारतीय जनता पार्टी (BJP):** भाजपा का पसमंदा आउटरीच मुख्य रूप से 'गैर-चुनावी' (Non-electoral) या प्रतीकात्मक रहा है। पार्टी ने विधान परिषद (MLC), राज्यसभा या सरकारी आयोगों (जैसे अल्पसंख्यक

आयोग) में तो पसमंदा चेहरों को नियुक्त किया है, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से विधानसभा या लोकसभा के कड़े मुकाबलों में पसमंदा उम्मीदवारों को सीधे चुनावी टिकट देने से परहेज किया है।

यह यथार्थवादी डेटा विश्लेषण इस कड़वे सच को उजागर करता है कि "अल्पसंख्यक राजनीति का वैचारिक लोकतंत्रीकरण तो हुआ है, लेकिन उसका विधायी लोकतंत्रीकरण अभी भी कोसों दूर है।" राजनीतिक दलों के भाषणों और घोषणापत्रों में पसमंदा शब्द ने जितनी जगह बनाई है, उतनी जगह उम्मीदवारों की सूचियों में नहीं मिल सकी है। सत्ता के वास्तविक गलियारों में आज भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत की अनदेखी की जा रही है, जो इस आंदोलन के भविष्य के संघर्ष की मुख्य धुरी होगी।

चुनौतियाँ और आलोचनात्मक विश्लेषण : अल्पसंख्यक राजनीति के लोकतंत्रीकरण के इस दौर में, पसमंदा विमर्श को केवल एक प्रगतिशील कदम के रूप में ही नहीं देखा जा सकता, बल्कि इसके आंतरिक अंतर्विरोधों और इसके राजनीतिक इस्तेमाल का समालोचनात्मक मूल्यांकन भी आवश्यक है। इसे मुख्य रूप से निम्नलिखित चार बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है:

1. मुस्लिम समुदाय की सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति (Collective Bargaining Power) का कमजोर होना : पारंपरिक मुस्लिम राजनीति के पैरोकारों और कुछ वाम-उदारवादी आलोचकों का तर्क है कि ऐसे समय में जब भारत में बहुसंख्यकवादी राजनीति (Majoritarian Politics) और ध्रुवीकरण चरम पर है, मुस्लिम समुदाय के भीतर जातिगत और वर्ग विभाजन को हवा देना आत्मघाती साबित हो सकता है।

- **एकजुटता बनाम विभाजन:** आलोचकों के अनुसार, अल्पसंख्यक पहचान को खंडित करने से राज्य या बहुसंख्यक वर्ग के सामने मुसलमानों की 'सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति' कमजोर होती है।
- **सुरक्षा का प्रश्न:** यह तर्क दिया जाता है कि जब सांप्रदायिक हिंसा या नागरिकता (जैसे CAA/NRC विमर्श) के मुद्दे सामने आते हैं, तब भीड़ यह नहीं देखती कि पीड़ित अशरफ है या पसमंदा। ऐसी स्थिति में, आंतरिक विभाजन समुदाय के व्यापक सुरक्षा-हितों को नुकसान पहुंचा सकता है।

2. भाजपा की 'सॉफ्ट आउटरीच' और चुनावी हथकंडे के रूप में इस्तेमाल : पसमंदा आंदोलन के सामने सबसे बड़ी चुनौती इसका दक्षिणपंथी राजनीति द्वारा राजनीतिक उपयोग है। राजनीतिक विश्लेषक पसमंदा विमर्श के इस राजनीतिक इस्तेमाल को दोहरे नजरिए से देखते हैं:



प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व बनाम वास्तविक सशक्तिकरण : भाजपा ने पसमंदा समाज को 'लाभार्थी वर्ग' के रूप में देखा और संगठनात्मक पदों पर तो जगह दी, लेकिन जब उन्हें वास्तविक राजनीतिक शक्ति (संसद और विधानसभाओं में टिकट) देने की बात आती है, तो यह भागीदारी शून्य के करीब दिखाई देती है।

- **एससी (SC) दर्जे पर विरोधाभास:** पसमंदा आंदोलन की एक प्रमुख और पुरानी मांग यह रही है कि 'अरजल' (दलित मुसलमानों) को भी हिंदू, सिख और बौद्ध दलितों की तरह संविधान के अनुच्छेद 341 के तहत अनुसूचित जाति (SC) का दर्जा और आरक्षण मिले। केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में इसके खिलाफ रुख

अपनाते हुए तर्क दिया है कि इस्लाम में छुआछूत का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, जो पसमंदा राजनीति के मूल सिद्धांतों के विपरीत है।

3. पसमंदा आंदोलन की वैचारिक सीमाएं और नेतृत्व का संकट : पसमंदा विमर्श पिछले तीन दशकों से विमर्श के स्तर पर तो बेहद मजबूत रहा है, लेकिन यह एक स्वतंत्र और स्थायी राजनीतिक ताकत के रूप में खुद को स्थापित नहीं कर पाया है।

- **स्वतंत्र नेतृत्व का अभाव:** ऑल इंडिया पसमंदा मुस्लिम महाज (AIPMM) या ऑल इंडिया मुस्लिम बैकवर्ड मोर्चा जैसे संगठन वैचारिक चेतना जगाने में तो सफल रहे, लेकिन वे पसमंदा समुदाय को एक स्वतंत्र 'वोट बैंक' या राजनीतिक दल के रूप में बदलने में पूरी तरह नाकाम रहे। परिणाम यह हुआ कि पसमंदा समाज अंततः टिकटों के लिए कांग्रेस, सपा, राजद या भाजपा जैसे दलों पर ही निर्भर बना रहा।
- **लैंगिक असमानता की अनदेखी:** पसमंदा आंदोलन मुख्य रूप से पुरुषों के नेतृत्व में संचालित रहा है। पसमंदा महिलाओं (जो कि वर्ग, जाति और लिंग के तिहरे शोषण का शिकार हैं) की समस्याओं और उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व को इस विमर्श में अभी तक वह स्थान नहीं मिल सका है जिसकी वे हकदार हैं।

4. मंडलवादी दलों की अवसरवादी राजनीति (Opportunistic Politics) : सपा, राजद और जदयू जैसी क्षेत्रीय और समाजवादी पार्टियों ने पसमंदा विमर्श को पूरी तरह से कभी स्वीकार नहीं किया। उनका दृष्टिकोण हमेशा अवसरवादी रहा है:

संरचनात्मक अवरोध (Structural Barrier) : ये दल सामाजिक न्याय का नारा तो देते हैं, लेकिन आंतरिक रूप से वे अपनी पार्टियों के भीतर अशरफ नेताओं (जैसे पूर्व नवाबों, बड़े व्यवसायियों, धार्मिक उलेमाओं) के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव पर निर्भर रहते हैं। यही कारण है कि वे पसमंदा समाज के लिए 'अलग से कोटे' या आनुपातिक प्रतिनिधित्व की मांग को ठंडे बस्ते में डाल देते हैं।

इस आलोचनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अल्पसंख्यक राजनीति का लोकतंत्रीकरण कोई सीधी या आसान रेखा नहीं है। 'अशरफ बनाम पसमंदा' विमर्श ने मुस्लिम समाज के भीतर के अंतर्विरोधों को उजागर करके एक ऐतिहासिक काम तो किया है, लेकिन जब तक यह आंदोलन प्रतीकात्मक बहसों और लाभार्थी मॉडल से बाहर निकलकर स्वतंत्र विधायी प्रतिनिधित्व और अनुच्छेद 341 के तहत वैधानिक अधिकारों की लड़ाई को मजबूती से नहीं जीतता, तब तक इसका वास्तविक लोकतंत्रीकरण अधूरा ही रहेगा। यह विमर्श फिलहाल एक चौराहे पर खड़ा है, जहाँ इसे बहुसंख्यकवादी राजनीति के इस्तेमाल से बचते हुए अपने सामाजिक न्याय के मूल एजेंडे को सुरक्षित रखना है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य समकालीन भारतीय राजनीति में अल्पसंख्यक विमर्श के भीतर चल रहे आंतरिक रूपांतरण और उसके चुनावी प्रतिनिधित्व के यथार्थ का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना था। 'अशरफ बनाम पसमंदा' के इस विमर्श ने स्वतंत्रता के बाद से चले आ रहे पारंपरिक अल्पसंख्यक राजनीतिक ढांचे को गहराई से झकझोरा है। पूरे अध्ययन के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित मुख्य निष्कर्ष सामने आते हैं:

1. मुख्य निष्कर्षों का संश्लेषण (Synthesis of Key Findings)

- **एकसार पहचान (Monolithic Identity) के भ्रम का अंत:** शोध यह स्थापित करता है कि भारतीय मुस्लिम समुदाय कभी भी एक समरूप या अखंड सामाजिक-राजनीतिक इकाई नहीं रहा है। इस्लामी धर्मशास्त्र के समतावादी सिद्धांतों के बावजूद, व्यावहारिक धरातल पर भारतीय मुस्लिम समाज गहरी जातिगत और वर्ग श्रेणियों (अशरफ, अजलफ, और अरजल) में बंटा हुआ है। पसमंदा आंदोलन ने इस विभाजन को मुख्यधारा की बहस में लाकर पारंपरिक अल्पसंख्यक राजनीति के उस एकाधिकार को तोड़ दिया है, जो 'मुस्लिम वोट बैंक' की कृत्रिम धारणा पर टिका हुआ था।
- **वैचारिक लोकतंत्रीकरण बनाम विधायी शून्यता:** वैचारिक धरातल पर पसमंदा विमर्श ने अल्पसंख्यक राजनीति का अभूतपूर्व लोकतंत्रीकरण किया है। इसने विमर्श के केंद्र को 'भावनात्मक व धार्मिक पहचान' के

मुद्दों से हटाकर 'समान नागरिकता, आरक्षण और सामाजिक न्याय' जैसे ठोस संवैधानिक अधिकारों की ओर मोड़ने का काम किया है। हालांकि, जब बात वास्तविक चुनावी प्रतिनिधित्व और विधायी निकायों (लोकसभा व राज्य विधानसभाओं) में आनुपातिक हिस्सेदारी की आती है, तो आंकड़े अभी भी अत्यंत निराशाजनक हैं। आज भी लगभग 15% आबादी वाला अशरफ संभ्रांत वर्ग संसद और विधानसभाओं में भेजे जाने वाले मुस्लिम प्रतिनिधियों के दो-तिहाई से अधिक हिस्से पर काबिज है।

- **चुनावी राजनीति में रणनीतिक उपयोग:** समकालीन दौर (विशेषकर 2014 के बाद) में, 'पसमंदा' शब्द राजनीतिक दलों के लिए एक निर्णायक चुनावी पत्ता बन गया है। जहाँ एक तरफ भारतीय जनता पार्टी (BJP) ने 'लाभार्थी मॉडल' और प्रतीकात्मक पदों के माध्यम से पसमंदा समाज तक पहुँच बनाकर पारंपरिक धर्मनिरपेक्ष दलों के वोट बैंक को खंडित करने की रणनीति अपनाई है; वहीं दूसरी तरफ समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल और कांग्रेस जैसे 'मंडलवादी' दल अपने पारंपरिक सामाजिक गठबंधनों को बचाने के लिए पसमंदा सम्मेलनों की ओर मुड़े हैं। हालांकि, दोनों ही धड़ों में पसमंदा समाज को वास्तविक विधायी सत्ता और चुनावी टिकट सौंपने में एक गहरी संरचनात्मक हिचकिचाहट दिखाई देती है।

संदर्भ सूची :

1. **Ahmed, I. (1973).** *Caste and Social Stratification among Muslims in India*. Manohar Publications, New Delhi, pp. 21–45.
2. **Ahmed, I. (1978).** *Endogamy and Caste Alternative among Muslims in Western Uttar Pradesh*. Express Magazine, 14(2), pp. 112–128.
3. **Alam, A. (2009).** *The Pasmenda Muslim Politics in India: Issues and Challenges*. Journal of Muslim Minority Affairs, 29(2), pp. 131–144.
4. **Ali, A. (2005).** *Masawat Ki Jang (The Battle for Equality)*. Indian Social Institute, New Delhi, pp. 48–72.
5. **Ansari, G. (1960).** *Muslim Caste in Uttar Pradesh: A Study of Culture Contact*. Ethnographic and Folk Culture Society, Lucknow, pp. 35–59.
6. **Ansari, K. A. (2011).** *Post-Mandal Muslim Politics: From Religion to Franchise*. Economic and Political Weekly, 46(42), pp. 23–26.
7. **Ansari, K. A. (2016).** *The Pasmenda Movement and the Question of Democratic Inclusivity*. Studies in Indian Politics, 4(1), pp. 89–102.
8. **Anwar, A. (2001).** *Musalmanon Mein Zaat-Paat aur Pasmenda Tehreek (Casteism among Muslims and the Pasmenda Movement)*. Rajkamal Prakashan, New Delhi, pp. 104–135.
9. **Fazal, T. (2014).** *Nation-state and Minority Rights in India: Comparative Perspectives on Muslim and Sikh Communities*. Routledge, London, pp. 167–189.
10. **Government of India. (2006).** *Social, Economic and Educational Status of the Muslim Community of India (Sachar Committee Report)*. Prime Minister's High-Level Committee, Cabinet Secretariat, New Delhi, pp. 190–214.
11. **Jamil, G. (2017).** *Accumulation by Segregation: Muslim Localities in Delhi*. Oxford University Press, New Delhi, pp. 78–95.
12. **Trivedi Center for Political Data (TCPD). (2024).** *Indian National Election Studies and Caste Composition of Legislators*. Ashoka University, Sonapat, pp. 12–18.
13. **Verma, A. (2023).** *The New BJP and Pasmenda Outreach: Shifts in Subaltern Politics*. Studies in Indian Politics, 11(1), pp. 45–58.